अध्याय पहला

दिनकर का साहित्य

प्राचीनकाल से "साहित्य" शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार होता आ रहा है। संस्कृत आचार्यों ने, आधुनिक साहित्यकारों ने तथा पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य शब्द को परिभाषित करने की अनेकानेक चेष्टाएँ की गई हैं। संस्कृत ग्रंथोंमें साहित्य और काव्य को पर्यायवाची माना है। संभवत: इसी कारण साहित्य की स्वतंत्र परिभाषाएँ बहुत कम मिलती हैं। सभी लिपिबध्द रचनाएँ साहित्य के अंतर्गत मानी जाती थी। अत: हम कह सकते हैं कि साहित्य का स्वरूप बडा व्यापक है। इस व्यापक साहित्य को किसी परिभाषा के सूत्रमें बाँधना कठिन है, फिर भी भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों ने इस दृष्टि से अनेक प्रयास किए हैं - उनमें से कुछ परिभाषाओं पर दृष्टि डालना आवश्यक है -

काव्य की सबसे प्राचीन परिभाषा अग्निपुराणमें मिलती है -

" संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम्।।"[१]

अर्थात् संक्षेपमें इष्ट अर्थ को प्रकट करनेवाली पदावली से युक्त ऐसा वाक्य काव्य है, जिसमें अलंकार प्रकट हों और जो दोषरहित और गुणयुक्त हो।"

आचार्य राजशेखर की परिभाषा :

" शब्दार्थ - योर्यथावत् सह भावेन विद्या साहित्य विद्या।"[२]

---

१. डॉ. भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, षष्ठ संस्करण, १९७५, पृ. ४.

२. गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत - [प्रथम भाग] पुन: मुद्रित, १९८४, पृ. ३.

अर्थात् साहित्य वह विधा है, जिसमें शब्द और अर्थ का समुचित सद्भाव रहता है।

१. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"[१] – आचार्य विश्वनाथ।

२. "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"[२] – पंडितराज जगन्नाथ।

३. "अदोषो सुगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।"[3] – आचार्य हेमचंद्र।

४. "सत्य की अपने मूल वास्तव में काव्य है।"[४]

५. "Poetry is the art of uniting pleasufe with truth by calling imagination to the help of reason."[५] Dr.Johnson.

६. "Poetry is the art of expressing in melodious words, thoughts which are the creation of imagination and feelings"[६] – अंग्रेजी के चैंबर्स कोष की परिभाषा.

७. "काव्य, कल्पना और अनुभूति से गृहीत सत्य की रमणीय शब्दोंमें अभिव्यक्ति है।"[७]

---

१. डॉ. भगीरथ मिश्र – काव्यशास्त्र षष्ठ संस्करण, १९७५, पृ. १७।
२. वही पृष्ठ " " "
३. वही पृष्ठ " " "
४. वही पृष्ठ " " "
५. वही पृष्ठ " " "
६. वही पृष्ठ " " "
७. वही पृष्ठ " " "

८. "शब्द, अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य-रचना काव्य है।"[८]

कवींद्र रवींद्र की परिभाषा -

" सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति हुई है। धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्दमें मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। यह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रंथ का ग्रंथ के साथ मिलन है, यही नहीं वरन् यह बताता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का मिलन कैसा होता है।"[९]

[डॉ. भगीरथ मिश्र और डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के काव्यशास्त्र ग्रंथ से उद्धृत परिभाषाएँ]

अर्थात् साहित्य या काव्य संक्षेपमें सुष्ठ अर्थ प्रदान करनेवाला, अलंकारसे युक्त, दोष रहित, गुणयुक्त, सत्य के यथार्थत्व की प्रधानता, सद्भाव रखनेवाली विधा, रस माधुर्य से युक्त, तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रोंमें सामंजस्य स्थापित करनेवाला हो। यही साहित्य के मूलतत्व या लक्षण हो सकते हैं।

संस्कृत आचार्यों से लेकर, आधुनिक भारतीय आचार्य, तथा पाश्चात्य विद्वानोंने साहित्य को परिभाषित करते समय किसी एक अंग को ही छुने का प्रयास किया है। इन सभी परिभाषाओं को समन्वित रूपसे देखा जाए तो वह निश्चय ही साहित्य की सुनिश्चित परिभाषा

---

८. डॉ. भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र -षष्ठ संस्करण, १९७५, पृ. १७।

९. गोविंद त्रिगुणायत-शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत [प्रथम भाग] पुनः मुद्रित १९८४, पृ. ४.

हो सकती है। पर यह कार्य दुष्कर है। क्योंकि साहित्य समाज के समान परिवर्तनशील है। नित्य नये मूल्य समाजमें निर्धारित होने के कारण साहित्यमें परिवर्तन अपेक्षित है। इसलिए हम कह सकते हैं कि साहित्य की परिभाषा भी समाज के साथ परिवर्तित एवं परिवर्धित होती जाती है।

हम यह अपेक्षा करते हैं कि साहित्यमें मानव मंगल की गाथा हो, मनोरंजनात्मक तत्व हो, उपदेशात्मक स्वर हो, वह सामान्य मानव के लिए बोधगम्य हो, वह कल्याणकारी हो, संपूर्ण मानव जीवन को प्रेरित करनेवाली हो और अंतमें इन सबसे युक्त मानवतावादी विचारमूल्यों पर आश्रित हो, तभी वह सफल साहित्य हो सकता है।

जब हम दिनकर साहित्य पर विचार करते हैं तो हमें दृष्टिगोचर होता है, उनका साहित्य भूत की धरातल पर खडा होकर वर्तमान से जूझते हुए भविष्य को वाणी देता है। इतना ही नहीं, इन तीनों में प्रेरणाप्रद जान पडता है - डॉ. पुष्पा ठक्कर के शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि -

" वास्तवमें शाश्वत साहित्य कविकी सुचिंतित विचारधारा का प्रतिफलन होता है। वह अतीत से प्राणरस लेता हुआ भी अतीत जीवी नहीं होता, क्योंकि वह ऐसे सूर्य का आलोक है जो अतीत को बेध कर वर्तमान के साथ भविष्य को भी अपनी जाज्वल्यमयी किरणों का वरदान देता है। अत: कवि दिनकर का काव्य भी अपने आपमें "युगधर्म" का हुंकार है"[१]

---

१. डॉ. पुष्पा ठक्कर - दिनकर काव्यमें युगचेतना, प्रथम संस्करण, पृ. १.।

उपर्युक्त कथन का प्रमाण है दिनकर लिखित साहित्य। "कुरुक्षेत्र", रश्मिरथी, उर्वशी जैसी रचनाएँ युगधर्म की पुकार है। ये रचनाएँ समसामयिक विभिन्न परिस्थितियों को चित्रित करने में अभूतपूर्व क्षमता रखते हैं। उनके "कुरुक्षेत्र"में प्रतिबिंबित समस्या - युध्द आज के युगमें मानवजातिके सम्मुख एक सनातन एवं ज्वलंत समस्या बनकर आयी है। वे युध्द को सारी समस्याओं की जड कहते हैं - इसके बारेमें नरेश मेहता भी कहने कहते हैं -

" युध्द आज की प्रमुख समस्या है। संभवता सभी युग की।"[१]

अत: हम कह सकते हैं कि समाज के बदलते परिवेश के अनुसार साहित्य के अर्थमें भी निरंतर परिवर्तन, संवर्धन दिखाई देता है। साहित्य और समाज का संबंध निरंतर चला आ रहा है। साहित्यकार सामाजिक प्राणी के दायित्व से समाज के प्रति अपना कर्तव्यधर्म निभाता है। समाज को उन्नति के पथ पर आसीन करने के लिए वह अपना योगदान देता है। अपने युग का व्याख्याता बनकर समान को धडकनों को सुनता है। और उसी समय उसका साहित्य युगसत्य की पुकार को अपनी आवाज देकर लिपिबध्द करता है। इस युगसत्य को अभिव्यक्ति देना वह अपना कर्तव्य समझता है। कवि दिनकर एक सशक्त - क्रांतदर्शी, जाज्वल्य देशभक्त, युगप्रतिनिधि युगस्रष्टा और महान कलाकार के नाते इन सभी बातों का निर्वाह अपने साहित्यमें किया है, इसमें संदेह नहीं।

दिनकर का साहित्य, साहित्य को विविध परिभाषाओं को

---

१. नरेश मेहता : "संशय की एक रात" प्रथम संस्करण, [निवेदनमें] पृ. १.

लाँघकर एक ऐसे पृष्ठभूमिमें आकर स्थित हुआ है कि जहाँ सद्भाव, प्रेम, करुणा, अहिंसा, दया, परोपकार आदि मानवतावादी मूल्यों को अर्थ दे। उनका साहित्य संपूर्ण मानवजीवन के मांगल्यपूर्ण रूपमें साकार हो उठा है। अपने युगपरिवेश से जुडकर साहित्य की सर्जना करना एक महान कलाकार का दायित्व समझकर उन्होंने अपनी भूमिका पेश की। आखिर साहित्य मानव जीवन का लेखा-जोखा ही है।

इसलिए आधुनिक हिंदी साहित्य परंपरामें रामधारीसिंह दिनकर का स्थान महत्वपूर्ण है। राष्ट्र कवि की परम्परामें उन्हें सबसे प्रबल एवं सशक्त कवि माना जाता है। एक प्रतिभाशाली, क्रांतिवादी, जाज्वल्य राष्ट्रकवि के रूपमें उपका परिचय दिया जाता है। सच्चे अर्थमें दिनकर साहित्य के अनेक क्षेत्रोंमें "दिनकर" ही थे। उनके व्यक्तित्व के विविधरंगी पहलू है। जिसप्रकार इंद्रधनुष से विविध रंग सम्मिलित होकर एक पूर्ण प्रतिमा तैयार होती है, उसी प्रकार दिनकररूपी इंद्रधनुष से सप्तरंगों से बढकर समग्र प्रतिमा साकार होती दिखाई देती है। वे दिग्भ्रमित है, युगस्रष्टा है, युगद्रष्टा है, युगपुरुष है, युगचारण है, राष्ट्रकवि है, एक सहजपुरुष है, इनके अतिरिक्त न जाने और क्या क्या है ? वैयक्तिक जीवनानुभूति, सामाजिक पीडा, देशप्रेम की झंकार, प्रगतिशील विचार, तत्व चिंतन प्रियता आदि उनके कविता के निनाद हैं। उनका साहित्य युगीन समाज, संस्कृति, इतिहास, अर्थव्यवस्था और विभिन्न तत्कालीन परिस्थितिमें पल्लवित हुआ। जिस के कारण बदलते सामाजिक संदर्भमें अपना अलग स्थान रखता है। इस संदर्भमें निम्नलिखित विवेचन उक्त कथन की पुष्टि देता है।

" युग परिवेश का मतलब होता है युग का वातावरण अर्थात् चतुर्दिक विस्तीर्ण देशकाल समाज की राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक,

साहित्यिक परिस्थितियाँ अथवा वातावरण। इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पडता है।"[१]

दिनकर साहित्य के संदर्भ में उक्त कथन सही लगता है। क्योंकि युगीन संदर्भ, युगपरिवेश का परिणाम ही उनका साहित्य है। अपने युगसे हटकर उन्होंने कवि कर्तव्य नहीं किया।

२० वी शताब्दिमें हिंदी कवियोंमें पुराणकथाओं का पुनर्मूल्यांकन करके सांस्कृतिक परंपरा का स्वाभिमान करनेमें दिखाई देता है। इस बारेमें डॉ. गो. रा. कुलकर्णी का मत है -

" लगभग १५० प्रबंधकाव्य पुराणकथाओंके आधार पर निर्माण हुए हैं। इनके द्वारा प्राचीन संस्कृति एवं इतिहास पुराण के पुनरुत्थान के साथ साथ प्राचीनता के गौरव की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें प्राचीन काल के उदात्त आदर्श एवं भव्य चरित्रों का पुनर्निर्माण हुआ है। इन कवियों ने उसके द्वारा आदर्श, मर्यादापूर्ण एवं चिंतनपूर्ण जीवनयापन का संदेश दिया है। तथा सतत संघर्षपूर्ण होते जाते मानवी जीवनमें नई प्रेरणाएँ भरने का सुचित एवं प्रशंसनीय प्रयास किया है।"[२]

दिनकर ने परंपरा के गौरवशाली गीत गाकर महत्वपूर्ण योग-दान दिया है। इस परम्परा का मोह कहो, स्वाभिमान कहो, लेकिन वे इससे बच नहीं सके हैं। भीष्म, युधिष्ठिर, पुरूरवा, उर्वशी, कर्ण, द्रौपदी, जैसे अलौकिक पात्रों को मानवी धरातल पर लाकर उनमें मानवोचित गुणों की खोज करने का प्रयास किया है। "कुरुक्षेत्र" में

---

१. डॉ. प्रतिमा जैन : दिनकर काव्य कला और दर्शन, प्रथम संस्करण, १९८०, पृ. २।

२. डॉ. गो. रा. कुलकर्णी-पौराणिक काव्य आधुनिक संदर्भ - पृ. ६०।

(४)

दो परस्पर विरोधी विचारों को लेकर संवाद खडा कर दिया है, शाश्वत सनातन - युध्द, शांति जैसी समस्यापर विचारमंथन करने की प्रेरणा उन्हें अतीत से ही मिली। "उर्वशी" में नारी की महिमा का वर्णन किया है उसे परंपरित और प्रगतिशील संदर्भमें चित्रित करके, नारी जाति भविष्य के प्रति कविने मंगल कामना की है। "रश्मिरथी" तो "कर्ण चरित्र का उध्दार" ही है। इनके चित्रणमें कवि का लक्ष्य रहा- मानव जीवनमें प्रेरणा भरना। यह कदम प्रशंसनीय है, श्लाघनीय है - जैसा कि डॉ. गो. रा. कुलकर्णी का मत उक्त बातों को पुष्टि देता है - क्योंकि ये सभी पात्र आधुनिक युगमें आकर विशिष्ट संदर्भमें अपना प्रतिनिधित्व करते हैं। उदा : द्वापर युग का महाभारतीय "कर्ण" और आधुनिक युग का दिनकर रचित कर्ण में युगबोध के अनुसार परिवर्तन दिखाई देता है। महाभारत द्वापरयुगीन रचना, जो रूढि और मर्यादा के बंधनमें बँधी थी। "रश्मिरथी" आज की - कलियुग की रचना - वैज्ञानिक युग की रचना, जो सर्व धर्म सम भाव को प्राधान्य देनेवाले युग की रचना है। इसलिए रश्मिरथी का कर्ण स्वतंत्र व्यक्तित्व रखनेवाला है। युग बोध के आलोकमें उसके परोपकारी, सहिष्णुता जैसे उच्च गुणों की पूजा के युग का कर्ण है। युगबोध के अनुसार चित्रित करना, ये ध्यानमें रखकर कि प्राचीनता को कहीं ठेस न पहुँचे। यद्यपि भारतीय समाज कुल और जाति की प्रतिष्ठा सनातन काल से चली आ रही है। इसलिए कर्ण, एकलव्य जैसे पात्र पुराणोंमें उपेक्षित रहे। परंतु वर्तमान युगमें दिनकर तथा दिनकर जैसे अन्य कवियों ने इन उपेक्षितों के अंतरंग को विशिष्ट स्थान दिया। कुल और जाति के बढते अहंकार को मिटाकर उसके स्थानपर उनके कर्तृत्व एवं गुणों को प्रतिष्ठा की उन्होंने कर्ण जैसे चरित्र को उजागर किया। फिर भी आधुनिक युगमें पतिव्रता सीता के त्याग की घटना, द्रौपदी वस्त्रहरण की घटना वैसी ही बनी रही है। मात्र दिनकर के भीष्म द्रौपदी के वस्त्रहरण पर पश्चाताप

व्यक्त करते दिखाई देते हैं।

रामधारीसिंह दिनकर ऐसे कुछ अपेक्षितों के अंतरंग बने वे उनके अंतरंग के गायक है। उनके इसी व्यक्तित्व पर निम्नलिखित बातें प्रकाश डालती हैं -

"कवि दिनकर वस्तु जगत् से निराश स्वप्नदर्शी कवि नहीं अपितु धुल और धरती के गायक, सांप्रतिक युग परिवेशके चारण। [वैतालिक] हैं। ये सजग सामाजिक चेतना के भावप्रवण कवि, उज्ज्वल भविष्य निर्माण के आकांक्षी, वज्रादपि कठोर कुसुमादपि सुकुमार भावों के उद्गाता, स्वस्थ आलोचक, स्वच्छ गद्य लेखक, तेजस्वी विचारक, वाग्मी, श्रेष्ठ वक्ता, कलम के धनी हैं।"[१]

भारतीय अतीत के इतिहास के चारण कवि दिनकर का जन्म बिहार जिले के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राममें हुआ। इनके जन्म का प्रामाणिक ब्यौरा इस प्रकार दिया जाता है -

"दिनकर का जन्म बिहार प्रदेश के सिमरिया नामक ग्राममें एक कुलीन कृषक परिवारमें हुआ। प्रामाणिक जन्मपत्रिका अप्राप्त होने के कारण उनकी जन्मतिथि पूर्णरूपसे निश्चित नहीं है। उनकी माताजी के कथनानुसार उनका जन्म फसली सन् १३१६ सालमें आश्विन शुक्लपक्षमें बुधवार की रात को लगभग बारह बजे हुआ था। उनकी छटी विजया दशमी को मनाई गयी थी। ज्योतिष गणना के अनुसार यह तिथि सन् १९०८ को पडती है।"[२]

---

१. डॉ. प्रतिमा जैन - दिनकर काव्य कला और दर्शन प्र. संस्करण १९८०, पृ. ५

२. डॉ. सावित्री सिन्हा युगचारण दिनकर, प्रथम संस्करण १९६२, पृ. १।

दिनकर की माता का नाम मनरूपादेवी और पिता का नाम बाबू रविसिंह था। पिता के नाम का उपनाम ही उन्हें रखा गया था। तीन भाईयों में से दिनकर मँझले भाई थे। दिनकर दो साल के होने पूर्वही पिता का देहांत हो गया। परिवार की जिम्मेदारी विधवा माँ पर आ पडी। बहुत ही कठिन परिस्थितिमें परिवार को गुजरना पडा। इसी संकटग्रस्त परिस्थितियोंमें माँ ने सारा दायित्व निभाया।

प्रारंभिक शिक्षा - दीक्षा -

इनकी प्रारंभिक शिक्षा अपनी जन्मभूमि सिमरियामें हुई। माध्यमिक शिक्षा मोकामाघाट - जो सिमरिया के पास ही स्थित है, वहाँ संपन्न हुई। सन १९३२ में पटना कॉलिज से इतिहास विषय लेकर बी. ए. [ऑनर्स] करने के बाद इनकी नियुक्ति हाइस्कूलमें प्रधानाध्यापक, के पद पर हुई। इसके बाद उन्होंने १९३४ से १९४३ तक वे बिहार प्रांत के सब रजिस्टार पद को संभाला। द्वितीय महायुध्द के दिनोंमें इन्होंने बिहार गवर्नमेंट के प्रचार विभागमें काम किया। १९५२ में वे राज्य सरकारके सदस्य रहे। १९६४ में कॉंग्रेस सदस्य को त्याग दिया और तत्पश्चात भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति से विभूषित हुए। दिनकरजी सार्वजनिक सेवा के विभिन्न पदोंमें कार्य करते हुए इनकी साहित्य सेवा का क्रम अनवरत रूपसे चलता रहा। वे शीघ्रही एक राष्ट्रवादी कवि के रूपमें प्रख्यात हुए। उसके बाद उनको राज्यसभा के मनोनीत सदस्य के रूपमें नियुक्त किया गया। तदनंतर भारत सरकार के स्वराष्ट्र मंत्रालयमें हिंदी सलाहकार के रूपमें उन्होंने भूमिका निभायी।

दरम्यान उनके १९३३ से लेकर १९६४ तक कविता के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। इनके साहित्य की सूचि इस प्रकार है -

दिनकर लिखित

प्रबंधकाव्य तथा मुक्तक रचनाएँ :

१]	प्रणभंग और बारदोली सत्याग्रह - [खंडकाव्य]	१९२९
२]	रेणुका - [काव्यसंग्रह]	१९३५
३]	हुंकार - [काव्यसंग्रह]	१९३९
४]	रसवंती - [काव्यसंग्रह]	१९४०
५]	द्वंद्वगीत [रुबाईयाँ]	१९४०
६]	"कुरुक्षेत्र" [महाकाव्य]	१९४६
७]	सामधेनी [काव्यसंग्रह]	१९४७
८]	बापू [गांधीकाव्य]	१९४७
९]	इतिहास के आँसू [काव्यसंग्रह]	१९५१
१०]	धूप और धुआँ [काव्यसंग्रह]	१९५१
११]	रश्मिरथी [खंडकाव्य]	१९५२
१२]	दिल्ली [काव्यसंग्रह]	१९५४
१३]	नीलकुसुम [काव्यसंग्रह]	१९५४
१४]	सूरज का ब्याह [काव्यसंग्रह]	१९५५
१५]	चक्रवाल [काव्यसंग्रह]	१९५६
१६]	कविश्री [काव्यसंग्रह]	१९५६
१७]	सीपी और शंख [काव्यसंग्रह]	१९५७
१८]	नये सुभाषित [काव्यसंग्रह]	१९५७
१९]	उर्वशी [महाकाव्य]	१९६१
२०]	परशुराम की प्रतीक्षा [काव्यसंग्रह]	१९६३.

दिनकर की गद्य कृतियाँ -

१]	मिट्टी की ओर [आलोचना]	१९४६
२]	राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता [संस्कृति]	१९५०
३]	राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय एकता [संस्कृति]	
४]	अर्धनारीश्वर [निबंध संग्रह]	१९५२
५]	रेती के फूल [निबंध संग्रह]	१९५४
६]	हमारी सांस्कृतिक एकता [संस्कृति]	१९५५
७]	संस्कृति के चार अध्याय [संस्कृति]	१९५६
८]	उजली आग [कथा और गद्यकाव्य]	१९५७
९]	देश विदेश [यात्रा विवरण]	१९५७
१०]	काव्य की भूमिका [आलोचना]	१९५८
११]	पंत प्रसाद और गुप्त [आलोचना]	१९५८
१२]	वेणुवन [निबंध संग्रह]	१९५८
१३]	धर्म की नैतिकता और विज्ञान [निबंध संग्रह]	१९६१
१४]	शुद्ध कविता की खोज	
१५]	साहित्यमुखी	
१६]	वटपीपल [निबंध संग्रह]	

दिनकर का बाल साहित्य

१]	धूपछाँह [कविताएँ]	१९४७
२]	मिर्च का मजा [कविताएँ]	१९५१
३]	सूरज का ब्याह [कविताएँ]	१९५५
४]	भारत की सांस्कृतिक कहानी [गद्य]	१९५५
५]	"चितौर का साका" - [गद्य]	१९६२

१] देश विदेश

२] लोकदेव नेहरु

काव्यप्रेरणा -

आदि कवि वाल्मिकि के काव्यप्रेरणा संबंधी कहा जाता है कि क्रौंच वध की घटना से उन्हें काव्य प्रेरणा मिली। महाकवि कालिदास का प्रेरणास्रोत कवि का प्रिया विरह रहा। विश्व कवि रवींद्र के उर्मिला विषयक लेख से मैथिली शरण गुप्त का "साकेत" पल्लवित हुआ। सुमित्रानंदन पंत को काव्य लिखने की प्रेरणा कूर्माचल के प्राकृतिक सौंदर्य से मिली। प्रगतिवादी कवियों का प्रेरणास्रोत मार्क्सवादी विचारधारा सामाजिक विषमता, शोषित वर्ग की दीनता आदि विषय रहे। कुछ अंग्रेजी दार्शनिकों ने दैवी प्रेरणा को काव्य का प्रेरणास्रोत माना है। दिनकर के साहित्य की पृष्ठभूमिमें ऐसी कोई एक निश्चित प्रेरणात्मक घटना नहीं मिलती। किंतु इतना अवश्य कहा जाता है कि, उनका वैयक्तिक जीवन, जीवनमें घटित अनेक समस्याएँ, विपरित परिस्थितियाँ, चतुर्दिक वातावरण, आदि बातें उनके साहित्य के लिए प्रेरित रही।

काव्य रचना की परोक्ष तथा अपरोक्ष प्रेरणा को बताते हुए कहते हैं -

" सबसे प्रथम ग्रंथ जिसने आगे चलकर दिनकर के कवि रूप के निर्माणमें योग दिया "रामचरितमानस" था। अन्य ग्रांथों की भांति सिमरिया में भी रामायण घर घर धार्मिक ग्रंथ के रूपमें पूज्यमानी जाती थी ----- रामायण का गान करनेमें उन्हें स्वयं आनंद आता था और ग्राम के अन्य व्यक्तियों को उनका पाठ अच्छा लगता था।"[१]

१. सावित्री सिन्हा-युगचारण दिनकर, प्रथम संस्करण, १९६३, पृ. १७.

शायद "मानस" से उन्हें काव्य प्रेरणा मिली होगी। प्रारंभ से ही धर्म ग्रंथोंमें रुचि उनकी काव्य प्रेरणा का एक स्रोत कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कविता लिखने की प्रेरणा उन्हें -

" कविता लिखने की प्रेरणा उन्हें गाँव की रामलीला और नौटकियाँ देखकर उत्पन्न हुई। सन १९२० में "प्रताप" में प्रकाशित "एक भारतीय आत्मा" की कविता का उनपर बहुत प्रभाव पडा। यह कविता लोकमान्य तिलक की मृत्यूपर लिखी गई थी।"[१]

अत: हम कह सकते हैं कि दिनकर काव्य पर वैयक्तिक जीवन, तत्कालीन परिस्थिति, धार्मिक ग्रंथ तथा अन्य घटनाओं का प्रभाव रहा है। इसके अतिरिक्त काव्यसृजन की प्रेरणा मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, "नवीन" रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों की रचना से मिली।

दिनकर साहित्य की विशेषताएँ -

दिनकर जब हिंदी साहित्यकाशमें प्रविष्ट हुए तब हिंदी साहित्यमें कविता की प्रमुख दो धाराएँ प्रवाहित थी। एक छायावादी, तो दूसरी राष्ट्रप्रेम की कविता की धारा। युगधर्म के प्रतिकुल छायावादी रोमानी भावुकता जो जीवन की वास्तविकता से दूर थी उसे छोडकर युगधर्मानुकूल धारा का साथ दिया। छायावादी कविता उन्हें प्रिय थी किंतु देशमें पीडित एवं शोषित जनता के सामने उसका औचित्य कम होता चला गया।

---

१. डॉ. सावित्री सिन्हा-युगचारण दिनकर, प्रथम संस्करण १९६३, पृ. १७-१८.

१] अतीत का गौरव - परंपरा का निर्वाह - संस्कृति के गायक।
२] साम्यवादी विचारधारा।
३] गांधीवादी विचारधारा।
४] प्रकृति चित्रण।
५] कर्म की अनिवार्यता।
६] प्रवृत्ति मूलक भावनाएँ।
७] जीवन के विरोधी तत्वोंमें सामंजस्य।
८] राष्ट्रीयता।
९] श्रृंगार भावना का चित्रण।
१०] भाषा शिल्प।

अतीत का गौरव गान -

दिनकर के काव्य की सबसे प्रधान विशेषता है - देशके प्राचीन इतिहास के प्रति आस्था रखना। उनकी राष्ट्रीयता अतीत कालीन भारत के गौरवशाली इतिहाससे प्रेरित है। कलिंग विजय, हिमालय, रेणुका, दिल्ली, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, उर्वशी आदि इसके साक्षी है। अतीत का गौरव मुक्त कंठसे करता है - जैसे -

" प्रियदर्शन इतिहास कंठमें
आज ध्वनित हो काव्य बने
वर्तमान की चित्रपटी पर
भूतकाल के संभाव्य बने " [१]

---

१. दिनकर - रेणुका। पृ.४८

[१] साम्यवादी विचारधारा -

"दिनकर का कुरुक्षेत्र साम्यवादी विचारसे प्रभावित है। मलिन राज-तंत्र को हटाने के लिए वह साम्यवाद का उद्घोष करता हैं। क्रांति, शोषण, के विरुद्ध कवि घोषणा देता है। न्यायोचित अधिकारों की माँग करता है। और यह विश्वास प्रकट करता है कि जब तक सुख का सम्यक विभाजन नहीं होगा तब तक समानमें शांति नहीं रहेगी। कुरुक्षेत्रमें साम्यवादी विचारों की बार बार पुनरावृत्ति हुई है।

[२] गांधीवादी विचारधारा -

दिनकर साहित्यमें पूज्यनीय गांधीजी की "करेंगे या मरेंगे", की भावना निहित है। वे गांधी विचारधारा से प्रभावित है किंतु विश्वशांति, के लिए हिंसा को अनिवार्य माना है, जहाँ गांधीजी अहिंसा के पुजारी थे, इसके अतिरिक्त हरिजनोध्दार, ग्रामोध्दार, कर्मयोग आदि भी चाहते थे।

[३] प्रकृति चित्रण -

प्रकृति चित्रण छायावादी कवियों की विशेषता रही है। दिनकर ने अपने काव्यमें प्रकृति की महिमा का वर्णन किया है। कुरुक्षेत्रमें प्रकृति का भीषण चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि, -

" पर हाय, यहाँ भी यथा रहा अंबर है
उड रही पवनमें दाहक, लोल लहर है
कोलाहलसा आ रहा काल गह्वर से
वाडव का रोर कराल क्षुब्ध सागर से

संघर्ष - नाद - वन - दहन - दारु का भारी
विस्फोट वहिन् - गिरि का ज्वलंत भयकारी "[1]

प्रकृति के अनेक रौद्र रूप कुरुक्षेत्रमें चित्रित हैं।

[५] कर्म की अनिवार्यता -

दिनकर के कर्मवाद पर गीता - गीतारहस्य - गांधीजी का प्रभाव है। जो निष्काम सेवा पर आधृत है। इसका विवेचन चौथे अध्याय में विस्तृत रूपसे करने जा रहे हैं। इसलिए यहाँ इतनाही कहना आवश्यक समझा जाता है।

[६] प्रवृति मूलक भावनाओं को प्रतिपादित करके जीवन के विरोधी तत्वोंमें समन्वय स्थापित करते हैं। इसका भी विवेचन आगे अपेक्षित है।

[७] राष्ट्रीयता -

दिनकर को राष्ट्रकवि के रूपमें घोषित किया है जाज्वल्य देशभक्ति, असीम राष्ट्रनिष्ठा, उनके काव्यमें पनपती है। "रेणुका" और हुंकार के गीत राष्ट्रगीतों की प्रेरक शक्तियाँ जा सकती है। "रेणुका" के प्रारंभिक गीतों से वे शंकीत थे। डॉ. सावित्री सिन्हा उनकी राष्ट्रीयता के बारेमें कहती हैं। -

" रेणुका के प्रारंभिक राष्ट्रीय गीतोंमें उनका मन संशयग्रस्त रहा। युग की तमिस्रा में किस ज्योति की रागिनी गाए, यह प्रश्न उनके सामने

---

१. रामधारीसिंह दिनकर - कुरुक्षेत्र - पंचम सर्ग, २७ वा संस्करण १९७४, पृ. ७५

था। लेकिन शीघ्रही, युग की चतुर्दिक जागृति ने उनका दिशा निर्देश करके श्रृंगी फूँक कर, महान प्रभाती राग गाने की प्रेरणा दी, प्रभाती, जिससे सुप्त भुवन के प्राण जाग उठे, जो आवाज भारतीय मानसमें सोते हुए शार्दूल चुनौती भेज सके, जो युगधर्म के प्रति भारतीय जनता को जागरूक कर सके, जिसको सुन कर युग युग से थमी हुई भारतीय जनता के निर्बल प्राणोंमें क्रांति की चिनगारियाँ उडने लगे।"[1]

भारतीय जनता के आर्थिक शोषण, अमानुषिक और पाशवी कृत्यों का प्रतिशोध लेने के लिए उन्होंने लेनिन की सशक्त रक्त रंजित क्रांति का आव्हान चाहा। "रेणुका" में क्रांति पनप रही थी उसी का विकास "हुंकार"में हुआ है। दिनकर अतीत को छोडकर वर्तमान की धरातल पर आए। एक ओर ब्रिटीश साम्राज्य की विनाशक शक्ति तो दूसरी ओर भारतीयों की समर्पण की भावना को व्यक्त करनेवाले क्रांतिगीत उन्होंने गाए। पराधीन देश के लोगों पर लगाए प्रतिबंध के कारण अपनी विवशता बताते हुए वे कहते हैं -

" जहाँ बोलना पाप है वहाँ क्या गीतों को मैं समझाऊँ।"[2]

"कुरुक्षेत्र" की रचना उस काल में हुई थी जब भारत पराधिनता की दासतामें जकडा था। पराधीन जनता का चैन अंग्रेजो के हाथों लूटा जा रहा था। ऐसे समय कविने जन मानसमें अतीत को याद करके उन्हें प्रेरित करते हुए कहा कि -

---

१. डॉ. सावित्री सिन्हा-युगचारण दिनकर, प्रथम संस्करण, १९६३, पृ. ४७.

२. दिनकर हुंकार-युगचारण दिनकर, प्रथम संस्करण, १९६३, पृ. १।

" पापी कौन ? मनुज से न्याय गुरानेवाला ?
या कि न्याय खोजते विघ्न का शीश उडानेवाला ?"[1]

स्वत्व छीनते ब्रिटीशों की निंदा करके गांधीजी की अहिंसा नीति का विरोध करते हुए कहते हैं कि -

" छीनता हो स्वत्व तेरा और तू
त्याग तप से काम ले यह पाप है
है उचित विच्छिन्न कर देना उसे
बढ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो "[2]

शोषण को अपना भाग्य समझनेवाली निरीह, अज्ञानी, जनता को कर्मवाद का संदेश दिया। कर्मवाद को अपनाने का आग्रह करके "आराम हराम है" वाले राष्ट्रीय नारे को उद्घोषित किया। उनका संपूर्ण काव्य राष्ट्रीयता का संदेश देता है।

दिनकर की राष्ट्रीयतामें क्रांतितत्व अनुस्यूत है। वस्तुत: यह क्रांति अपने निजी परिवेश के कारण आयी है। वह रूस की लाल क्रांति का आव्हान करते समय विभिन्न प्रतीकों को सहारा लेना है "शिवा रक्तरहित वतना, भारत की लाल भवानी आदि। उसकी क्रांति का लक्ष्य है विश्वशांति प्रस्थापित करना।

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना अतीत के प्रति प्रेम और वेदना को व्यक्त करती है। संपूर्ण"रेणुका" काव्यसंग्रह इस भाव का परिचायक है।

---

१. दिनकर - कुरुक्षेत्र - २३ वा संस्करण १९७४, पृ. ३८.

२. दिनकर - कुरुक्षेत्र - २३ वा संस्करण १९७४, पृ. १८

[७] शृंगार भावना का चित्रण -

शृंगार भावना का चित्रण दिनकर के "रेणुका" रसवंती और उर्वशीमें हुआ है। ओज और पौरुष के गीत गानेवाला कवि मानव के कोमल भाव का भी गीत गाता है। उनके सौंदर्य भाव के आलंबन है प्रकृति और नारी। प्रकृति को पूर्ण यौवना, दिव्यसुंदरी के रूपमें देखा है।

इनके अतिरिक्त दिनकर कविता के मूल स्वर हैं - आस्तिकता, पुनर्जन्म पर विश्वास, नारी सम्मान, शिष्टाचार, सहनशीलता, निर्भीकता, बौध्ददर्शन, दर्शन, नियति आदि।

[८] भाषा -

दिनकर की भाषा की सबसे बडी विशेषता है सशक्त अभिव्यक्ति। उन्हों ने सर्वत्र सरल, सार्थक एवं भावानुकूल भाषा का उपयोग किया है। भाषा के प्रयोग में उन्होंने उदार दृष्टिकोण अपनाया है। तत्सम, तद्भव, देशज ग्राम्य, उर्दू शब्दों का प्रचुर मात्रामें प्रयोग किया है। जगह जगह पर कहावतें मुहावरों का, आदि का भी प्रयोग मिलता है। इनकी भाषा का प्रधान गुण ओज है।

" रेणुका" "रसवंती" हुंकार की भाषा जहाँ सरल और बोधगम्य है, प्रसादगुण से युक्त है वहाँ उर्वशीमें संस्कृत के प्रचलित अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है।

साहित्यिक सम्मान -

कवि दिनकर को -

संस्कृति के चार अध्याय नामक ग्रंथ को १९५३ में साहित्यिक अकादमी का पुरस्कार दिया गया। १९५९ में इनको साहित्यिक सेवाओं

के पुरस्कार - स्वयम राष्ट्रपतिद्वारा पद्मभूषण की उपाधि प्रदान की गई। १९६२ में भागलपुर विश्वविद्यालय से डि. लिट की उपाधि दी। नागरी प्रचारिणी सभा का द्विवेदी पदक इन्हें कुरुक्षेत्र और रश्मिरथी पर दो बार मिला। इसके अतिरिक्त समय समय पर भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, साहित्यकार संसद, इलाहाबाद तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना द्वारा इनको पुरस्कृत किया गया।

दिनकर जी की कृतियों का सम्मान विदेशी और अन्य भारतीय भाषाओंमें हो रहा है। "जापान" का अंग्रेजी पत्र "ओरियन्ट वेस्टमें कलिंग विजय का अनुवाद प्राप्त हुआ, "यूनाइटेड एशिया" में इनकी आठ कविताओं का अनुवाद छपा, रूसमें इनकी कविताओं का अनुवाद हुआ। "संस्कृति के चार अध्याय" प्राचीन खंड का अनुवाद जापानी भाषामें हुआ है। "कुरुक्षेत्र" का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओंमें हो रहा है। कन्नड और तेलुगु भाषामें यह प्रकाशित भी हो चुकी है।

-x-x-x-x-

अध्याय दूसरा

"कुरुक्षेत्र" का संक्षिप्त कथानक

रामधारीसिंह दिनकर लिखित कुरुक्षेत्र को विभिन्न विद्वानोंने विभिन्न नामों से अभिहित किया है। कुरुक्षेत्र द्वारा कवि क्या कहना चाहता है इस प्रश्न को लेकर आलोचकोंमें तीव्र मतभेद हैं।

कुछ विद्वान "कुरुक्षेत्र" साम्यवादी रचना मानते हैं क्योंकि इसमें साम्यवादी विचारोंकी अभिव्यक्ति हुई है। समाजमें शांति की स्थापना के लिए उत्पाद्य वस्तुओंका समान रूपसे वितरण होना चाहिए परंतु ऐसा होता नहीं। इन विचारोंकी गुंजाईश कुरुक्षेत्रमें होनेके कारण साम्यवादी विचारकोंकी मान्यता उचित लगती है।

प्रगतिवादी आलोचकों ने इसे प्रगतिवादी काव्य के नामसे घोषित किया है। प्रगति का अर्थ है — आगे बढना, विकास आदि। "कुरुक्षेत्र" में मनुष्य और समाजको प्रगतिके पथ पर ले जाने की बातोंका निर्वाह दिखाई देता है। संपूर्ण काव्यही व्यष्टिविकास तथा समष्टिविकास से प्रेरित है। राष्ट्रीयता, न्याय, शांति, विज्ञान, प्रेम, करुणा आदि व्यक्ति तथा समाज विकास के अंग माने गए हैं। इनसे समाजविकास अपेक्षित है। इन बातोंका उहापोह होने के कारण प्रगतिवादी आलोचकोंने इसे "प्रगतिवादी" काव्यके नामसे घोषित किया है।

कुछ विचारक "कुरुक्षेत्र" को भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित रचना मानते हैं, क्योंकि इसका कथानक पौराणिक है, जो महाभारत से लिया गया है। पुराणोंने हमारी संस्कृति को पूर्णतः प्रभावित कर डाला है। हमारी संस्कृति की ये विशेषता रही है कि समाजमें जो भी कुछ ग्राह्य है, उसे अपनाना। दिनकर के विचारों का उद्गमस्थान तो महाभारत है,

और महाभारत हमारा परमपवित्र ग्रंथ है, इसलिए कुरुक्षेत्रको अनेक विद्वानोंने भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित रचना माना है।

विचार और चिंतन के आधिक्य के कारण कुछ विद्वान इसे चिंतनप्रधान लम्बी कविता मानते हैं।

कुछ विचारक इसे युध्द तथा शांति का काव्य मानते हैं। क्योंकि युध्द के कारणों, परिणामों तथा उद्देश्योंका मंथन होने के कारण इसे युध्द काव्यके रूपमें स्वीकार किया है।

इन सभी मतोंको ध्यानमें रखते हुए निम्नलिखित एकात्म मत स्वीकारणीय लगता है -

" श्री रामधारीसिंह दिनकर कृत कुरुक्षेत्र काव्य के सभी समीक्षकों ने एकमतसे जिस तथ्य को लक्ष्यगत करके इस कृति की महत्ता को स्वीकार किया है, वह है —— जीवन-दर्शन और यह भी सत्य है कि " कुरुक्षेत्र " काव्यगत उपादानों और कलात्मक प्रतिमानों की दृष्टिसे इतनी भव्य रचना नहीं, किंतु जीवन-दर्शन के आलोकसे दीप्तिमान विराट काव्यकृति। " कुरुक्षेत्र " में प्रतिपादित जीवनदर्शन को समालोचकों ने प्रगतिवादी, साम्यवादी, समाजवादी, मानवतावादी, प्रवृत्तिमूलक व्यवहारवादी आदि विभिन्न अभिधानों द्वारा संबोधित किया है। किंतु वास्तविकता यह है कि "कुरुक्षेत्र" के माध्यमसे दिनकरजी ने मानवतावादी जीवनदर्शन की मान्यताओं को ही युध्दवादी विचारदर्शन की पृष्ठभूमिपर प्रस्थापित करने का सफल प्रयास है।"[१]

---

१. देवीप्रसाद गुप्त : हिंदी महाकाव्य सिध्दांत और मूल्यांकन, प्रथम संस्करण, १९६८, पृ. ३५७-५८ [अपोलो पब्लिकेशन - जयपुर].

इन विभिन्न मत मतांतरोंपर दृष्टिपात करने के बाद हम इस निर्णयपर आ पहुँचते हैं कि, कुरुक्षेत्रमें साम्यवादी विचारप्रणाली, प्रगतिवादी विचारधारा, भारतीय संस्कृतिकी अभिव्यक्ति, चिंतनप्रधान कविता, युध्द तथा शांति स्थापना, मानवतावादी दृष्टिकोण इन सभी मतोंका अल्प्य चित्रण मिलता है। इन विभिन्नतामें एकता का आभास इसमें मिलता है। वह एकता है —— गीतामें प्रतिपादित कर्मयोग। जीवन के विरोधी तत्वोंमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास इसमें किया गया है। निष्काम कर्म करने की ओर प्रेरित किया है।

अब यह देखना आवश्यक है कि इसमें प्रबंधात्मकता निर्वाह कहाँ तक हो पाया है। महाकाव्य, खंडकाव्य और एकार्थकाव्य इन प्रबंधकाव्य के भेदोमेंसे कौनसे श्रेणीमें वह खरा उतरता है।

विद्वानोंने महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षणोंका समाहार कर लिया है जैसे -

" कथानक की ऐतिहासिकता, कथावस्तु का सर्गोंमें विभाजन, नाटकीय संधियोंका निर्वाह, नायक का धीरोदात्त गुणोंसे युक्त एवं उच्चकुलीन होना, श्रृंगार, वीर, शांतरसोंमें एक की प्रमुखता एवं अन्य रसोंका सहायक होना, चतुर्वर्ग फल प्राप्ति, सर्गसंख्या आठसे अधिक, काव्यारंभमें मंगलाचरण, आशीर्वचन, सज्जन स्तुति, दुर्जन निंदा, संध्या सूर्य, प्रदोष, प्रात: मध्यान्ह, मृगया, पर्वत, ऋतु, सागर, संयोग----- यात्रा, विवाह पुत्रोत्पत्ति आदिका सांगोपांग वर्णन होना, महाकाव्य का नामकरण कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित होना। आदि"[१]

---

१. देवीप्रसाद गुप्त : हिन्दी महाकाव्य सिध्दांत और मूल्यांकन
प्र. संस्करण १९६८, पृ. १२-१३.
अपोलो पब्लिकेशन जयपुर.

दिनकर ने भीष्म और युधिष्ठिर की योजना करके महाभारतीय कथानक का आश्रय तो लिया है लेकिन घटना कहीं घटित होती दिखाई नहीं देती, लेकिन उन घटित घटनाओंपर विचार मंथन होता दिखाई देता है। उसमें भी कोई क्रमबध्दता नहीं। कथावस्तु का सात सर्गोमें विभाजन हुआ है। नायक उच्च कुलोत्पन्न एवं मानवी गुणोंसे युक्त है। वीर रस अंगी है। साकेत, आर्यावर्त आदि महाकाव्यों के समान "कुरुक्षेत्र" का नामकरण "कुरु" प्रदेश ध्यानमें रखते हुए किया है, जहाँ कौरव पांडवोंका विश्वविख्यात युध्द हुआ था। इस दृष्टिसे नामकरण संयुक्तिक है। वर्णन कौशल्य प्रसंगका आया है। प्रश्नोत्तरी, तर्कोत्तरी आदिका उहापोह हुआ है।

इस संबंधमें डा. नगेंद्र कहते हैं -

"इसमें न तो कुरुक्षेत्र का घटनाचक्र है, न उसका क्रमिक निबंध : इसमें तो कविके शब्दोंमें उसका शंकाकुल हृदय मस्तिष्क के स्तरपर चढकर बोल रहा है। वास्तवमें चिंताप्रधान कविताका यही उद्देश्य है।"[1]

स्वयं दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" प्रबंध तत्व के समर्थनमें कहा है कि -

"मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्मका प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था, किंतु तब यह रचना शायद प्रबंधके रूपमें न उतरकर मुक्तक बनकर रह गई होती।"[2]

१] डा. नगेंद्र : आस्थाके चरण, प्रथम संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस २३, दरियागंज, प्रथम संस्करण, पृ. ६०९.

२] रामधारीसिंह दिनकर : कुरुक्षेत्र, २३ वा संस्करण १९७४ पृ. ३. [प्रस्तावना] राजपाल एन्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली.

निष्कर्ष रूपमें "कुरुक्षेत्र" के रचना शिल्प पर विचार किया जाय तो वैचारिक दृष्टिसे प्रबंधकी गरिमा समृध्द है, उसका सौंदर्य उसमें वर्णित विचारों को लेकर है, न कि काव्य उपकरणोंमें। भीष्म और युधिष्ठिर की अनेक संवादोंमें अनेक स्थलोंपर मार्मिक स्थलोंकी, भावोंकी पहचान होती है। उसके सौंदर्य स्थलोंका रहस्य काव्यसौंदर्य, चमत्कार पांडित्यपूर्ण प्रदर्शनमें नहीं, वरन् विचार और भावोंकी सरल अभिव्यक्तिमें है। अत: एक विचारप्रधान लम्बी कवि होते हुए भी उसमें प्रबंधात्मकता पुट दिखाई देता है।

"कुरुक्षेत्र" की कथावस्तु के मूलस्रोत

सन १९४६ में "कुरुक्षेत्र" का प्रकाशन हुआ। द्वितीय महायुध्द समाप्त हो चुका था। स्वयं दिनकर प्रथम तथा द्वितीय महायुध्द के बीच से गुजरे थे। इन दो महायुध्दों की विभीषिका की अनुभूति तथा परिणामों को उन्होंने देखा था। दूसरी बात यह है कि "कुरुक्षेत्र" और "कलिंग विजय" इन दोनों की रचना की पृष्ठभूमिमें बहुत कुछ साम्य है। स्वयं कविके मनमें "कलिंग विजय" लिखते समय ही "कुरुक्षेत्र" की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी, वे कुरुक्षेत्र की भूमिकामें लिखते हुए इस बात का समर्थन करते हैं -

"बात यों हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और "कलिंग विजय" लिखते लिखते मुझे ऐसा लगा कि, मानो युध्द की समस्या सारी समस्याओं की जड है। इसी क्रममें द्वापर की ओर देखते हुए मैंने युधिष्ठिर को देखा जो विजय इस छोटेसे शब्द को कुरुक्षेत्रमें बिछी हुई लाशोंसे तोल रहे थे।"[१]

---

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र, २३ वा संस्करण १९७४ पृ. ३ [प्रस्तावना]
राजपाल ॲंड सन्ज, कश्मिरी गेट, दिल्ली.

"सामधेनी" की कुरुक्षेत्र की रचनामें बडा योगदान है। कविने "सामधेनी" तथा कलिंग विजय कविता लिखते समय जो युध्द की समस्या उठायी थी वही समस्या कुरुक्षेत्रकी आधारशिला है। अत: कलिंग विजय और कुरुक्षेत्रकी रचना की पृष्ठभूमिमें साम्य दिखाई देता है। कलिंग को जीतने के पश्चात सम्राट अशोक के मनमें जिस तरह का वैराग्य उत्पन्न हुआ था उसी प्रकार महाभारत का युध्द जीतने के बाद युधिष्ठिर का मन शोकसे भरा था। इसप्रकार कुरुक्षेत्र लिखने की प्रेरणा तत्कालीन परिस्थिति, महाभारतीय युध्द, कलिंग युध्द आदिसे मिली है।

"कुरुक्षेत्र" की कथानक का मूल आधार महाभारत है। जो ऐतिहासिक है। कथावस्तु के मूलस्रोत पर निम्नलिखित कथन विचारणीय है-

" महाभारतके सौप्तिक पर्वमें युधिष्ठिर को मृत सम्बधियों के अंतिम संस्कार संपन्न करते समय ज्ञात होता है कि कर्ण उनके अग्रज थे। इससे उनका मन अशांत हो जाता है। शांतिपर्वमें युधिष्ठिर नारद के सम्मुख विस्तार से अपनी अंतस् वेदना को प्रस्तुत करते हैं। वे युध्द की निंदा करते हुए वन गमन हेतु उधत होते हैं। किंतु अपने पाँचो भाईयों तथा द्रौपदी के विरोध एवं श्रीकृष्ण के परामर्श पर वे हस्तिनापूर आते हैं जहाँ उनका राज्याभिषेक होता है। श्रीकृष्ण के आदेशानुसार वे राज्यधर्म के ज्ञानबोध हेतु भीष्म पितामह के पास आते हैं। भीष्म पितामह बडे विस्तारसे राज्यधर्म का उपदेश देते हैं।"[१]

महाभारतमें उपर्युक्त कथानक "स्त्रीपर्व" से "आश्वमेधिक पर्व" तक फैला है। किंतु कुरुक्षेत्र का कथानक "शांति" एवं "उधोग" पर्वतक सीमित्त है।

---

१. देवीप्रसाद गुप्त : हिंदी महाकाव्य: सिध्दांत और मूल्यांकन, प्रथम संस्करण १९६८, पृ. ३२५. अपोलो पब्लिकेशन जयपुर.

अतः यह स्पष्ट है कि दिनकरने महाभारत के शांतिपर्वसे कथावस्तु अवश्य ग्रहण की है, फिरभी कुरुक्षेत्रकी कथामें आदिसे अंततक उनकी कल्पनाशक्ति और मौलिकता का परिचय मिलता है। इसमें घटनाएँ कम और विचार अधिक है। महाभारतके दो प्रमुख पात्रों को लेकर अनेक विचारमंथन प्रस्तुत करते हैं। इन पात्रों के आधुनिकता का परिचय भी उन्हीं के शब्दोंमें हमें मिलता है -

" मैं जरा भी दावा नहीं करता कि "कुरुक्षेत्र" के भीष्म और युधिष्ठिर, ठीक-ठीक, महाभारतके ही युधिष्ठिर और भीष्म है।"[१]

पात्र — भीष्म और युधिष्ठिर ऐतिहासिक होते हुए भी उनके आधुनिक संदर्भ में परखने का प्रयास किया है।

दिनकर के "कुरुक्षेत्र" के कथानक का ब्यौरा देनेसे पूर्व उसकी पृष्ठभूमिको जानना आवश्यक है। किसी कृति या घटना को देखने से पूर्व उस घटना की पूर्व पीठिका को समझना आवश्यक है। इसलिए "कुरुक्षेत्र" की पृष्ठभूमि पर एक नजर डालना अनिवार्य है। यह प्रमाणित हुआ है कि दिनकरके कुरुक्षेत्र का कथानक महाभारतके शांतिपर्वसे लिया गया है। शांतिपर्व के पूर्व स्त्रीपर्व आता है। स्त्रीपर्वमें महाभारत के अनेक वीर, योध्दाओं के मारे जाने के कारण महाराज धृतराष्ट्र, गांधारी तथा अन्य स्त्रियोंका शोकविलापका वर्णन किया गया है। मृत व्यक्तिओंका अंतिम दाहकर्म करने के लिए कोई नहीं बचा है। अर्थात् अनेक कुटुम्बों तथा वंशोंका सर्वनाश हुआ है। इसलिए महाराज धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को सभी का दाह कर्म करने को कहते हैं।

---

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र, २३ वा संस्करण १९७४ प्रस्तावना पृ. ३-४.

उनके कहनेपर युधिष्ठिर तथा अन्य पांडव अपने सगे संबंधियों का विधिवत् अंतिम क्रिया कर्म गंगाके किनारे करते हैं। फिरभी धृतराष्ट्र के मनको शांति नहीं मिलती, युधिष्ठिरके मन को भी शांति नहीं मिलती। युधिष्ठिर का मन असंख्य वीरों तथा सगे संबंधियों के मारे जानेसे शोकसे जल रहा है। वे कहते हैं -

"यदि हमें यह बात मालूम होती तो हमारे लिए पृथ्वी की तो क्या स्वर्गकी कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। फिर तो यह कुलकुल का उच्छेद करनेवाला भीषण संहार भी न होता।"[1]

यहाँ स्त्रीपर्व समाप्त होकर शांतिपर्व का प्रारंभ होता है।

महाभारत के शांतिपर्व के प्रारंभमें युधिष्ठिर के शोक का वर्णन है। युधिष्ठिर के शोक का सांत्वन करने का प्रयास महर्षि व्यास, भगवान श्रीकृष्ण आदि करते हैं। फिरभी उनका शोक शांत नहीं होता। महर्षि व्यास के कहनेपर भगवान श्रीकृष्ण उन्हें पितामह भीष्म के पास ले आते हैं।

दिनकर के "कुरुक्षेत्र" के युधिष्ठिर स्वयं ही पितामह भीष्म के पास आते हैं, कहते हैं -

" भर गया ऐसा हृदय दुःख दर्दसे,
फेन या बुदबुद उसमें नहीं उठा।
सींचकर उच्छ्वास बोले सिर्फ ये
पार्थ मैं जाता पितामह पास हूँ "[2]

---

१. संक्षिप्त महाभारत [द्वितीय खंड] संपादक संशोधक जयदयाल गोयंदका, गीताप्रेस, गोरखपुर १२ संस्करण पृ. १०५७.

२. दिनकर : कुरुक्षेत्र, प्रथमसर्ग २३ वा संस्करण, १९७४ पृ. १०.

प्रथमसर्ग -

युध्द की निन्दासे प्रथमसर्ग का प्रारंभ होता है। महाभारत का युध्द समाप्त हो गया है। कुरुक्षेत्र की रणभूमि योध्दाओं तथा अनेक प्राणियोंके लाशों से भरी है। यह दृश्य देखकर महाराज युधिष्ठिरका मन उदास हो गया है। इसी उदासीनतामें वे सोचते हैं - मैंने ये क्या, किया ? इस महाविनाशसे उनका पश्चाताप भरा अनेक प्रश्नोंसे उन्हें सता रहा है - महाभारत क्यों हुआ ? किन कारणोंसे युध्द होते हैं ? क्या वे ही कारण महाभारत के युध्द के मूल में थे ? युधिष्ठिरका कहना है - पाँच असहिष्णु नर के द्वेषसे, द्रौपदी वस्त्रहरण के लिए पूरे देशका संहार हुआ। पाँच व्यक्तियों के कारण इतना बडा अनर्थ हुआ। करोडों माताएँ पुत्रविहिना तथा करोडों स्त्रिया पतिविहिना बन गई। इस रक्तरंजित राज्यको अब मैं कैसे भोगूँ ? मैंने विजय प्राप्त की है पर

" किंतु इस विध्वंस के उपरांत भी
शेष क्या है ? व्यंग्यही तो भाग्य का
चाहता था मैं प्राप्त करना जिसे
तत्त्व वह करगत हुआ था उड गया "[१]

अपनी इस आत्मग्लानि और चिंता की दयनीय दशामें युधिष्ठिर को एक स्वप्नसा दिखाई देता है, जिसमें दुर्योधन उन्हें कह रहा है -

" हे युधिष्ठिर तुम सुनो
ओ युधिष्ठिर सिंधु के हम पार है

---

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र : २३ वा संस्करण १९७४ प्रथमसर्ग पृ ७.
राज्यपाल और सन्स दिल्ली.

तुम चिढाने के लिए जो कुछ कहो
किंतु कोई बात हम सुनते नहीं "[1]

अर्थात् दुर्योधनके कहने का भाव यह है कि युधिष्ठिर तुम जीतकर भी हार गए। हम हारकर भी विजयी हुए, अब तुम्हारे लिए यही उपहार शेष है -

" व्यंग्य, पश्चाताप, अन्तर्दाह का
अब विजय उपहार भोगो चैनसे "[2]

यह सत्य है कि युधिष्ठिर जिन वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता था, वे शत्रुओंके साथ ही चली गई। यदि बचा है तो व्यंग्य, पश्चाताप और अंतर्दाह। युधिष्ठिर को यह आशा थी कि विजय प्राप्त करने के पश्चात राजसिंहासन पाकर वे सुख और शांतिसे राज्य करेंगे किंतु उन्हें अशांति के सिवा कुछ नहीं मिला। इसलिए वे बार बार सोचते हैं कि, यह महाभारत निष्फल हुआ क्योंकि उसकी परिणाति दु:खमें हुई। युधिष्ठिर आगे कहते हैं जिस को विजय दिखाना चाहा था वे ही इस विजय को देखने नहीं रहा। तो इस विजय का क्या औचित्य है ? इसलिए हर्ष का स्वर जीवित व्यक्तियोंपर किया हुआ व्यंग्य है। इस तरह के अनेक विचार युधिष्ठिर की ग्लानि और पश्चाताप को बढा रहे हैं। अति विचारसे उनके मनका द्वंद्व प्रबल होकर जीवन और जगत् की निस्सारता की बात सोचता है।

द्वितीय सर्ग -

शरशय्यापर पडे अजेय भीष्मने आयी हुई मृत्यूसे कह दिया कि, अभी जानेका योग नहीं है, तुम रुको। उसी समय युधिष्ठिर को पितामह ने

---

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र : २३ वा संस्करण १९७४ प्रथमसर्ग पृ. ८
२. दिनकर : कुरुक्षेत्र : २३ वा संस्करण १९७४ प्रथमसर्ग पृ. ९.

चरणस्पर्श करते देखा। युधिष्ठिर अत्यंत व्याकुल और अधीर स्वरमें कहते हैं - पितामह! दुर्योधन वीर गति पाकर चला गया। वास्तवमें जीत किसकी हुई और हार किसकी ? यदि इसका परिणाम पहले जानता तो मैं तनोबल छोडकर मनोबलसे लडता। तब भीष्मने धर्मराज युधिष्ठिरको समझाते हुए कहा कि युध्द अवश्यंभावी था। उसे पांडव नहीं रोक सकते थे। युध्द को तूफान के समान अनिवार्य कहते हुए भीष्म आगे कहते हैं - जिस प्रकार गर्मी अधिक होती है तो तुफान होता है। यह सृष्टिका नियम है। यह तुफान रुकते नहीं रुकता। इसी प्रकार जडसमुदायके हृदयमें विकारोंकी चिनगारियाँ फूटने लगती है। अर्थात् ईर्ष्या देष, क्षोभ, लोभ, मत्सर आदि विकार बढते हैं तो युध्दरूपी तुफान अनिवार्य होता है। अत: युधिष्ठिर की जो धारणा हो गई थी कि पाँच पांडवों के लिए जो इतना बडा विनाश हुआ इस बात का खंडन करते हुए पितामह भीष्म कहते हैं - महाभारत के युध्द के पीछे वैयक्तिक स्वार्थ, राजनीति और प्रतिशोध की ज्वाला निहित है। अत: युध्द पाप नहीं हो सकता।

इस सर्गमें पितामह भीष्म युध्द के कारणोंपर विचार करते हुए युधिष्ठिर मनोबल छोडकर तनोबलसे लडने की बात का धिक्कार करते हैं। इन्हें — तप, त्याग, अहिंसा, आदिको व्यक्तिधर्म बताते हैं। और इन्हें समुदायके सामने निष्क्रिय बताते हैं। युध्द करना क्षत्रियोंका धर्म बताते हैं। स्वत्व छीनने आता है तो युध्द आपध्दर्म बनता है। अत: निष्कर्ष रूपमें हम कह सकते हैं कि इस सर्गमें युध्द की अनिवार्यता और तप, त्याग आदि का क्षात्रधर्ममें कहाँ तक स्थान है, इन दो बातोंपर अधिक बल दिया गया है।

तृतीय सर्ग -

तृतीय सर्गमें "कुरुक्षेत्र" के प्रतिपाद्य विषय युध्द और शांतिपर

विचार किया गया है। इसी समस्या की गंभीरता व्यक्त करने के लिए शांतिसंबंधी बातोंकी पुनरावृत्ति दिखाई देती है। "शांति" को केंद्रस्थ मानकर अनेक विधानोंद्वारा इसको स्पष्ट किया है। पितामह भीष्म युध्द को निंद्य कहते हुए कहते हैं कि "

"समर निंद्य है धर्मराज पर शांति वह क्या है जो अनीतिपर स्थित होकर भी बनी हुई सरला है"[१]

आगे वे कहते हैं - युध्द कोई नहीं चाहता, मरने मारने के घृणित व्यापार में कोई पैसना नहीं चाहता, किंतु विवश होकर युध्द करना पडता है। शांतिके प्रकारों के बारेमें प्रकाश डाला है। शांति का शुध्द रूप तथा कृत्रिम रूप की चर्चा इस सर्गमें की है। युध्दके लिए उत्तरदायी कौन ? कृत्रिम शांति कौन निर्माण करता है ? आदि प्रश्नोंका समाधान प्रस्तुत होता दिखाई देता है। अन्याय शोषण का प्रतिरोध होना चाहिए। शांतिका प्रथम न्यास न्याय और समता है। इनके सिवा समाजमें शांति की अपेक्षा करना भूल है।

इस सर्गमें दिनकर यह बताना चाहते हैं कि अधिकार माँगनेसे नहीं मिलते, उसे छीनकर लेना पडता है, चाहे उसके लिए युध्द करना क्यों न पडे। अन्यायी, शोषित व्यक्तियों के विरुध्द लडना पाप नहीं।

चतुर्थ सर्ग -

कुरुक्षेत्र के महान पात्र पितामह भीष्म के व्यक्तित्व के अनेक पहलू यहाँ व्यक्त होते हैं। महान पराक्रमी, क्षात्रधर्म के मूर्तिमंत आविष्कार, नीतिज्ञ, बुद्ध प्रतिज्ञ, वीर, तथा गंभीर तत्ववेत्ताका रूप हमारे सामने

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र २३ संस्करण १९७४, पृ. २२. तृतीय सर्ग.

आता है। अपार शक्ति और साहस युक्त रूप भी हमें देखने को मिलता है जैसे –

ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के महास्तंभ, बल के आगार, परम विरागी आदि शब्दोंमें इन्हें चित्रित किया है। इतना ही नहीं –

" शरों की नौंक पर लेटे हुए गजराज – जैसे,
थके, टूटे गरुड-से श्रान्त पन्नगराज-जैसे,
मरण पर वीर – जीवन का अगम बल भार डाले
दबाये काल को, सायास संज्ञा को सँभाले "[१]

विश्वके इतिहास के एक अभूतपूर्व महान व्यक्ति पितामह भीष्म इस सर्गमें कहते हैं – "महाभारत" दो घरों का युध्द नहीं था। व्यक्तिगत स्वार्थ इस युध्द के मूल उत्स है। द्रुपद-द्रोण, अर्जुन-कर्ण, शकुनि का अपने पिताका ऋण चुकाना, परस्पर कलह, द्वेष आदि महाभारत के मूल कारण हो सकते हैं। वे यह विश्वास व्यक्त करते हैं कि द्रौपदी के वस्त्रहरण के दिन यह युध्द होनेवाला था। राजसूय यज्ञ भी इस युध्द का कारण हो सकता है। इस प्रकार युध्दकी पृष्ठभूमि पहलेसेही कैसे तैयार थी बताते हैं। सभी राजा लोगोंकी असंतुष्टता भी इसका कारण बन सकती है। इसलिए युधिष्ठिरको समझाते हुए कहते हैं कि तुमने जो युध्द किया वह पाप नहीं हो सकता। न्याय पुरानेवाला ही रण को आमंत्रित करता है। तुम इसपर पश्चाताप मतव्यक्त करो। न्याय, समता से लोगोंकी सेवा करो। इसके बाद दिनकरने शूरधर्मका विवेचन किया है।

---

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र : चतुर्थसर्ग पृ. ३७, २३ वा संस्करण १९७५.

इसप्रकार चौथे सर्गमें युध्द के कारण बताये गए हैं। शांति-प्रियता की नीति केवल मनुज को ही रोक सकती है, दनुज को नहीं। महाभारत इसलिए हुआ कि कुछ शूर थे, कुछ वीर थे। प्रतिशोध और वैमनस्यकी भावना, राजसूय यज्ञ आदि युध्द के कारणोंको बताया गया है। शूरधर्मका विवेचन किया है।

पितामह भीष्म ने स्वयंको भी युध्द के लिए दोषी बताते हुए कहा कि प्रेम और कर्तव्य के बंधनमें पडकर मैंने युध्द में भाग लिया। अंतमें बीती बातोंको भूलकर नये युगका सूत्रपात करने की बात करते है।

पंचम सर्ग -

इस सर्गमें फिरसे युधिष्ठिर के मन की व्यथा का चित्रण मिलता है। सर्गारंभमें कविने तत्कालीन समाज की भीषण परिस्थितियों का चित्र अंकित किया गया है। युधिष्ठिर समझते हैं कि सिंहासन के लोभ के कारण युध्द हुआ। विजय तो प्राप्त हुई, पर युध्द की विभीषिका से वे चिंतित है। इस महासमर के बाद विजयबालाने उन्हें वरमाला पहनाई। तात्पर्य यह कि संसारमें विजयी व्यक्ति श्रेष्ठ और सम्मानित सिध्द होते हैं। सामान्य जीवनमें नरहत्या को पाप समझा जाता है, लेकिन युध्द स्थितिमें इससे विपरित न्याय होता है। जो युध्दमें अधिक हत्या करके विजय हासिल करता है, वह आदर्श कहलाता है। संसार का यह न्याय युधिष्ठिर को विपरित - सा लगता है। इन सभी विचारोंसे उनकी मति कुंठित-सी हो गई है। वे वीरमाला लेकर खडी वीरबालासे कहते हैं -

"तुम युधिष्ठिरको नहीं पा सकोगी, और पितामह भीष्मसे भी वे कहते हैं कि, पापकर्मोंसे प्राप्त हुआ ये सिंहासन, ये राज्य मुझे नहीं चाहिए। यह राज्यभोग और सिंहासन आदि प्राप्त करने के लिए

युध्द करना पडता है तो अक्सर मैं युध्द के लिए प्रवृत्त नहीं होता और न इतना संहार करता"[१]

अत: इस मोहके कारण मेरा सर्वनाश हुआ है। इसलिए मैं अब मोहके साथ युध्द करूँगा। मुझे विश्वास है कि इस युध्दमें निश्चित ही मुझे विजय मिलेगा। इस युध्द के कारण कटी हुई मानव-सभ्यता की लता पर नये शांतिमय अमृत के फल उगेंगे। "कुरुक्षेत्र" के रणमैदानमें पडी हुई यह धूल ही मानव साधना के मार्ग का अंतिम पडाव नहीं है, किंतु इससे सावधान होकर मनुष्य आगे बढने के लिए प्रयास करेगा। मनु का वंशज युधिष्ठिर इससे निराश नहीं हुआ है किंतु वह नवधर्म का दीप अक्षय प्रदीप्त करेगा।

इस सर्गमें युधिष्ठिरके मनका चिंतन व्यक्त हुआ है। अंतमें युधिष्ठिर स्वीकारते हैं कि महाभारत का मुख्य कारण उनके मनमें छिपा हुआ सिंहासन, धन और राज्यभोग है। इस लोभ के नाश का उपाय है - संपत्ति और धनका समान बँटवारा। जब सुखका विभाजन ठीकसे होगा, उसी समय अक्षयही क्षितिशांति प्रस्थापित होगी। अत: इसमें युधिष्ठिरके आशावादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

षष्ठ सर्ग -

स्वयं दिनकर ने इस सर्ग को क्षेपक कहा है - जैसे -

" पूरा का पूरा छटा सर्ग ऐसा ही क्षेपक है, जो इस काव्य से टूटकर अलग भी जी सकता है। "[२]

---

१. दिनकर : कुरुक्षेत्र : पंचमसर्ग, २३ वा संस्करण १९७४ पृ. ६५
२. दिनकर : कुरुक्षेत्र : २३ वा संस्करण, १९७४ [निवेदन] पृ. ४

अत: इस सर्ग की कथावस्तु अन्य सर्गोंसे भिन्न है। यहाँ पर कविका मस्तिष्क बोलता दिखाई देता है। द्वापरकाल के युध्द विषय को उन्होंने आजके वैज्ञानिक युग की पृष्ठभूमिमें आंकने का प्रयास किया है। सर्ग के आरंभमें वे भगवानसे प्रश्न कर रहे हैं कि - धर्म का दीप, दया का दीप इस संसारमें कब जलेगा ? विश्वशांति के लिए भीष्म, युधिष्ठिर, बुध्द, अशोक, गांधी, ईसा मसीह आदि महापुरुषोंने अनेक उपदेश दिए। सभी ने इनकी वाणी का सिर झुकाकर सम्मान किया किंतु आज भी शोषण का साम्राज्य है। विश्व शांति के लिए तरस रहा है पर युध्दमें ही जल रहा है। इन महानुभावों के आदर्शोंकी कोई मानता ही नहीं। वह पुराने मार्गपर ही चल रहा है। मानवने विज्ञान के क्षेत्रमें अत्यधिक उन्नति करके धरती और आकाशपर अधिकार पाया है। संसारके सभी गूढ रहस्यों को उन्होंने खोल दिया है। जल, बिजली उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। वह आसानीसे नदी, पर्वत, सागर पार कर सकता है। प्रकृतिको उसने दासी बनाया है। किंतु दु:ख इस बात का है कि, उसने बुध्दिका विकास तो पाया लेकिन हृदय विशाल नहीं बन सका। सभी सद्प्रवृत्तियाँ नष्ट होती गई। इन महान पुरुषों के सिध्दांतों, विचारों तथा तत्वोंको वह व्यवहारमें लानेमें असमर्थ हुआ, आज प्रेम त्याग आदिकी आवश्यकता है।

कवि अंतमें इस निष्कर्ष पर आ पहुँचता है कि मनुष्य के अन्वेषणोंसे कुदरती जीवनका विनाश कर लिया है। प्राचीन युगमें धरतीपर सभी का समान रूपसे अधिकार था। "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना थी। किंतु मनुष्यने संचय करना जबसे प्रारंभ किया तबसे उसके मनमें स्वार्थ की चिनगारियाँ बढ गयी।

विज्ञान का चरम उद्देश्य संसारमें समरसता बढाना है। साम्य की शीतल और उदार रश्मिसे विश्वमें समरसता प्रस्थापित हो सकेगी

किंतु ऐसे दिन कब आयेंगे ?

इस सर्गमें भीष्म और युधिष्ठिर का कहीं भी संकेत नहीं मिलता। कवि अपने विचार व्यक्त करते दिखाई देता है। कवि इस बात पर दृष्टि-क्षेप डालना चाहता है कि विज्ञान युगमें सभी क्षेत्रमें उन्नति तो की है किंतु ये उन्नति विनाश संकेत देती है। इस उन्नति का उपयोग मनुष्य की वास्तविक सुखसमृध्दि से होगा तो अक्षय प्रगति के मार्ग खुले होंगे। और सभी सुखी होंगे।

सप्तम सर्ग -

सप्तम सर्ग सबसे विस्तृत सर्ग है। इसमें युध्द के परिणाम तथा स्वरूप को देखकर यह प्रस्तुत किया गया है कि मनुष्य पाप तो करता है पर पापकी खाईमें गिरकर भी उसे बाहर निकलने का यदि वह प्रयत्न करता है तो महान बन सकता है। मनुष्यमें मनुष्यत्वका विकास चाहता है। लेकिन यह विकास तभी संभव है जब वह अपनी क्षुद्र स्वार्थों को त्याग दे और अपनी प्रतिभा बुध्दि, साहस और क्षमता के बल पर इनपर विजय पा ले।पितामह भीष्म कहते हैं संसारमें पाप-पुण्य उत्थान-पतन तो चलता ही है। दु:ख के बादल दूर होकर सुखके शांति के फूल खिलने की आशा भी व्यक्त करते हैं इसीलिए कुरुक्षेत्र का युध्द मानवता संहार नहीं। द्वापर की समाप्ति होकर एक नवीन युग का प्रारंभ होगा, इसमें मानव अक्षय उत्थान के मार्गपर आरूढ होगा।

इस सर्ग में प्रवृत्ति-निवृत्ति, भाग्य-कर्म, भोग-त्याग, आदि विरोधी भावोंमें सामंजस्य स्थापित करके कर्म को ही निजधर्म बताया है। राजतंत्र की निंदा करके शोषणमुक्त समाज की कल्पना की है। व्यक्तिगत मोक्ष का पथ, संन्यास का पथ कायरता का मार्ग बताया है।

पलायनवादी दृष्टि छोडकर पीडित प्रजा की रक्षामें प्रवृत्तिमय जीवन को अपनाने को कहा है। संन्यास या पलायन मनुष्यमें निर्वेद उत्पन्न करके चिंता का शिकार बनाता है। लेकिन जीवन की वास्तविकता यह है कि, नश्वर संसारमें भी कर्तव्यों का निर्वाह होना चाहिए।

अंतमें कवि मानव-मन को ही वैर, लोभ, द्वेष का मूल मानता है। मानव का शत्रु उसका अंतर्मन है, अन्यत्र नहीं। उसे उस मनपर नियंत्रण रखके मानवता के विकास पर विश्वास रखते हुए जनकल्याण के मार्गपर चलना चाहिए। लोककल्याण हेतु स्वयं को समर्पित करके धर्म, शांति, साम्य और प्रेम की ज्योति से मानवता के नये दीप जलाने का संकेत करता है।

x-x-x-x-x-x